अथ ब्राह्मी मण्डूकपर्णी च । तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सरस्वती । मण्डूकपर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥
ब्राह्मी हिमासरा तिक्ता लघुर्मध्या च शीतला । कषाया मधुरा स्वादुपाकाऽऽयुष्या रसायनी ॥
स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकासजित् । विषशोथज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी ॥ २८३ ॥

ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के नाम तथा गुण—ब्राह्मी, कपोतवङ्का, सोमवल्ली और सरस्वती ये नाम ब्राह्मी के हैं । मण्डूकपर्णी, माण्डूकी, त्वाष्ट्री, दिव्या और महौषधी ये नाम मण्डूकपर्णी के हैं । ब्राह्मी—शीतवीर्य, सारक (दस्तावर), तिक्त, कषाय और मधुर रसयुक्त, लघु, मेधा के लिए हितकर, शीतल, विपाक में मधुर रस युक्त, आयु को बढ़ाने वाली, रसायन, स्वर को उत्तम करने वाली, स्मरण-शक्ति को बढ़ाने वाली एवं कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रक्तविकार, खाँसी, विष, शोथ तथा ज्वर को दूर करने वाली होती है । मण्डूकपर्णी—इसके भी समस्त गुण ब्राह्मी के समान ही हैं ॥

नोट—भावप्रकाशकार ब्राह्मी तथा मण्डूकपर्णी दोनों के समान गुण लिखते हैं । वास्तव में ये दो भिन्न वनस्पतियाँ हैं । सुश्रुत चि० २८-४ में ब्रह्मी तथा मण्डूकपर्णी दोनों के अलग-अलग प्रयोग दिये हुये हैं । उत्तर प्रदेश के अधिकांश वैद्य जिसको ब्राह्मी मानते हैं यह वास्तव में मण्डूकपर्णी है जिसका लेटिन नाम हाइड्रोकोटाइल् एशियाटिका है । इसकी २, ३ किस्में तथा एक अन्य जाति भी पाई जाती है । इनके अतिरिक्त बंगाल के वैद्य जलनीम (हर्पेस्टिस् मोनिएरा) को ब्राह्मी मानते हैं । हो सकता है कि दोनों के गुणों में कुछ समानता पाई जाती हो और इसी कारण भावप्रकाशकार ने इनके गुण एक समान लिखे हों । इनमें से हाइड्रोकोटाइल् एशियाटिका निश्चित रूप से मण्डूकपर्णी मालूम होती है क्योंकि इसका बिहार प्रान्त का स्थानिक नाम बेंगसाग है, जिसका अर्थ मेंढक का शाक है । यहाँ दोनों का अलग-अलग वर्णन किया है ।

१७० ब्राह्मी (बंगीय), जलनीम

हि०—ब्राह्मी, जलनीम, ब्रह्मी । **बं०**—ब्राह्मीशाक, ऊषाबिनि । **म०**—ब्राह्मी । **ते०**—शम्ब्रनी चेट्टु । **ता०**—नीरब्रह्मि । **अं०**—Bacopa (बॅकोपा) । **ले०**—*Bacopa monnieri* (*Linn.*) *Pennell* (बॅकोपा मोनिएराइ (लिन.) पेन्नेल); B. monnera Wetts. (बॅ० मोनिएरा वेट); Herpestis monniera (Linn.) H. B. & K. (हर्पेस्टिस् मोनिएरा) । Fam. Scrophulariaceae (स्क्रोफ्युलॅरिएसी) ।

पानी के समीप आर्द्र स्थानों में यह सर्वत्र पाई जाती है ।

इसका **क्षुप**—प्रसरी एवं किञ्चित् मांसल होता है । **पत्ते**—अभिलट्वाकार, आयताकार या लंबा के आकार के अखण्ड, अवृन्त, कुण्ठिताग्र, सूक्ष्म काले चिह्नों से युक्त एवं ६-२५ × २·५-१० मि० मि० बड़े होते हैं । **पुष्प**—जामुनी मिला हुआ श्वेत या गुलाबी रंग का होता है । **फली**—५ मि० मि० लम्बी, अण्डाकार, चिकनी तथा नुकीली होती है, जिसमें सूक्ष्म बीज होते हैं ।

इसका स्वाद कड़वा होने से तथा जल के समीप होने से इसे जलनीम भी कहते हैं । इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराभ ब्राह्मीन (Bramhine, 0·01–0·02%) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसमें का क्षाराभ मेढ़क, चूहे तथा गिनीपिग आदि के लिये बहुत ही विषैला है। इससे रक्त का दबाव कम होता है। अल्प मात्रा से रक्त का दबाव कुछ बढ़ता है तथा श्वसन क्रिया को भी बल मिलता है। अत्यल्प मात्रा से भी अनैच्छिक मांसपेशियां, जैसे आन्त्र, गर्भाशय आदि उत्तेजित होती हैं। चिकित्सा की मात्रा में इसके क्षाराभ का प्रभाव स्ट्रिकनीन की तरह पड़ता है जिससे हृदय को बल मिलता है।

यह वातनाड़ी-संस्थान के लिये बल्य, मूत्रल एवं विरेचक है। इसका प्रयोग अपस्मार, उन्माद तथा स्वरभंग में किया जाता है।

(१) आमवात में इसके स्वरस का बाह्य प्रयोग करते हैं।

(२) बच्चों के सर्दी, खाँसी आदि में इसका स्वरस एक चम्मच देने से वमन तथा विरेचन होकर लाभ होता है।

(३) अवसाद, मानसिक दौर्बल्य आदि अवस्थाओं में इसके पत्तों का चूर्ण उपयोगी है।

(४) अपस्मार, हिस्टीरिया आदि में इससे बना ब्राह्मी घृत उपयोगी है।

मात्रा—स्वरस ½–१ तोला; चूर्ण ४–८ रत्ती।

१७१ मण्डूकपर्णी

हि०–ब्रह्ममाण्डूकी, ब्राह्मीभेद। **बं०**–थोलकुरी। **गु०**–खड़ब्राह्मी। **क०**–बंदेलग। **ते०**–मण्डूक ब्राह्मी। **ता०**–वल्लै। **म०**–कारिवणा। **अं०**–Indian Pennywort (इंडियन पेनीवर्ट)। **ले०**–*Centella asiatica* (*Linn.*) *Urban* (सेन्टेला एशियाटिका (लिन.) अरबन); Hydrocotyle asiatica, Linn. (हाइड्रोकोटाइल एशियाटिका, लिन.)। Fam. Umbelliferae (अम्बेलीफेरी)।

यह भारत तथा लंका में आर्द्र स्थान पर ६००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह विदेशों में भी पाई जाती है।

इसका क्षुप—रूप में कुछ भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। **काण्ड**–लंबे, प्रसरी एवं ग्रन्थियों पर मूलों से युक्त होते हैं। **पत्ते**–गोल वृक्काकार, अखण्ड परन्तु धार पर प्रायः गोल-दन्तुर, १·३–६·३ से. मी. व्यास में एवं लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**–ग्रन्थियों से कई पुष्पदण्ड एक साथ निकलते हैं, जिनमें लाल रंग के पुष्प संख्या में ३–५, सवृन्त मूर्धज होते हैं। **फल**–८ मि. मी. लंबे तथा चिपटे होते हैं, जिनमें चिपटे बीज होते हैं।

इसकी अन्य किस्में होती हैं, जिनमें एक में पत्ती बड़ी एवं फल सफेद तथा दूसरी में पत्ती छोटी तथा लाल फल होते हैं। एक अन्य जाति हा. रोटन्डिफोलिया (H. rotundifolia Roxb.) भी होती है जिसका क्षुप-बहुत कोमल, पत्ते-पतले झिल्ली के समान, स्पष्टतः ५–७ खण्डित एवं व्यास में १८ मि. मी. तक होते हैं। इसमें प्रत्येक पुष्पदंड में पुष्प १०–१५ तक एवं अवृन्त होते हैं। इसमें कोणपुष्पक सूक्ष्म होते हैं। पहला में वे स्पष्ट, प्रत्येक पुष्पदण्ड के साथ दो-दो, तथा चौड़े लट्वाकार होते हैं। इसके पत्तों एवं काण्ड का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसको छाया में सुखाकर चूर्ण बनाकर बन्द बोतलों में रखना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराभ हाइड्रोकोटिलिन (Hydrocotylin, $C_{22}H_{33}NO_8$), एक ग्लाइकोसाइड, एशियाटिकोसाइड (Asiaticoside), अल्प उड़नशील तैल, स्थिरतैल तथा रालीय द्रव्य पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त वेलेराइन (Vellarine), पेक्टिक एसिड

(Pectic acid) तथा विटामिन सी. (Ascorbic acid) पाये जाते हैं। शुष्क पौधे में सेन्टोइक् एसिड (Centoic acid-C_{30} H_{48} O_6) तथा सेन्टेलिक् एसिड (Centellic acid, C_{30} H_4 C_6) पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह रसायन, वृष्य, मूत्रजनन, वयःस्थापन, मेध्य, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है। अधिक मात्रा में यह मादक है। इससे शिरःशूल, चक्कर आना तथा कभी-कभी संन्यास (Coma) की अवस्था भी हो जाती है। इससे त्वचा की रक्तवाहिनियों का विस्फार होता है।

इसका प्रयोग वातिक विकार, चर्मरोग एवं रक्तविकार में किया जाता है।

(१) त्वचा के विकारों में यह अच्छी लाभदायक है। कुष्ठ में इससे कुछ लाक्षणिक लाभ एवं साधारण स्वास्थ्य ठीक होता है। फिरंग की द्वितीयावस्था एवं तृतीयावस्था तथा जीर्ण आमवात में इसको देते हैं। फिरंग में इसके देने से एक सप्ताह में त्वचा मुलायम पड़कर छूटने लगती है। अन्य त्वचा रोगों में भी इससे लाभ होता है। इसका चूर्ण व्रण पर लगाते हैं तथा इसे खिलाते हैं। इसके प्रयोग से यदि कण्डू हो तो कुछ दिन इसे रोकना चाहिये तथा रेचक औषध देनी चाहिये।

(२) बच्चों के खूनी आँव में २ से ४ पत्तों का स्वरस, जीरक एवं मिश्री के साथ पिलाते हैं तथा नाभि के नीचे लेप करते हैं।

(३) बच्चों को शब्दोच्चारण ठीक करने के लिये इसे चबाने को देते हैं।

(४) स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिये इसका चूर्ण दुग्ध के साथ दिया जाता है।

मात्रा – चूर्ण २–४ रत्ती; ताजे पत्ते ८–१२ प्रौढ़ के लिये; २–४ बालकों के लिये।

१. मण्डूकपर्णी

परिचय

गण—तिक्तस्कन्ध, प्रजास्थापन, वयःस्थापन (च०), तिक्तवर्ग (सु०)।

कुल—शतपुष्पा-कुल (अम्बेलिफेरी–Umbelliferae)।

नाम—लै०–सेण्टेला एशियाटिका (Centella asiatica (Linn.) Urban) सं०–मण्डूकपर्णी (मण्डूक–मेढक के समान पत्रवाली), माण्डूकी (सम्भवतः मण्डूकवत् जलासन्न स्थानों में होने के कारण या मण्डूक ऋषि के द्वारा प्रचारित होने के कारण या मण्डूकवत् भूमि पर इतस्ततः फैलने के कारण इसे माण्डूकी कहा गया है)। ब्राह्मी (बुद्धिवर्धक होने के कारण), सरस्वती (मेध्य तथा जलासन्न भूमि में होने के कारण)।

हि०–बेंगसाग, ब्राह्मी, बं०–थुलकुडी, म०–करिवणा, गु०–खण्डब्राह्मी, ता०–वाल्लरीकिरि, ते०–मण्डूकब्राह्मी।

स्वरूप—इसका क्षुप वर्षायु होता है जो कभी-कभी दो-तीन वर्षों तक भी रहता है। इसका लम्बा काण्ड जमीन पर फैला रहता है जिसके प्रत्येक पर्व से मूल, पत्र, पुष्प तथा फलों का उद्गम होता है। पत्र–गोल, वृक्काकृति, $\frac{1}{2}$–$2\frac{1}{2}$ इञ्च

लम्बे-चौड़े, सात सिराओं से युक्त, स्वाद में तिक्त होते हैं। **पुष्प**–छोटे रक्तवर्ण, वसन्त ऋतु में होते हैं। **फल**–छोटे $\frac{1}{8}$–$\frac{1}{4}$ इञ्च के, ग्रीष्मऋतु में होते हैं जिनमें चपटे बीज रहते हैं। **मूल**–सूक्ष्म और सूत्रवत् होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत और लंका में सर्वत्र २००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है और प्रायः जलाशयों और नदी-नालों के किनारे होती है।

रासायनिक संघटन—इसमें हाइड्रोकोटिलिन (Hydrocotyline, $C_{22}H_{32}O_8N$) नामक क्षाराभ पाया जाता है। इसकी ताजी पत्तियों में प्रति किलो ०·७ मे ०·१२ ग्रेन तक एशियाटिकोसाइड (Asiaticoside) नामक ग्लाइकोसाइड निकाला गया है। इनके अतिरिक्त, इसमें वेलेरिन (Vallerine), राल, तिक्त पदार्थ, पेक्टिक अम्ल, स्टेरॉल, वसाम्ल, टैनिन, उड़नशील तैल तथा ऐसकोर्विक अम्ल पाये जाते हैं। थानकुनिसाइड नामक अन्य ग्लाइकोसाइड तथा थानकुनिक अम्ल का भी पता चला है। एशियाटिक अम्ल की भी उपस्थिति पाई गई है। इनके अतिरिक्त, ब्राह्मोसाइड, ब्राह्मिनोसाइड, ब्राह्मिक एसिड, आइजोब्राह्मिक एसिड, बेटुलिक एसिड तथा स्टिग्मास्टेरोल ये छः तत्व भी इससे निकाले गये हैं।

गुण

गुण—लघु **रस**—तिक्त **अनुरस**– कषाय
विपाक—मधुर **वीर्य**—शीत **प्रभाव**—मेध्य

कर्म

दोषकर्म—मण्डूकपर्णी तिक्त होने के कारण कफ और पित्त का शमन करती है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—त्वचा पर लेप करने से रक्तसंवहन शीघ्र होता है।

आभ्यन्तर-नाड़ीसंस्थान—यह मेध्य है और स्मरणशक्ति को बढ़ाती है। विशेष कर इससे मस्तिष्क की धारणा शक्ति बढ़ती है। मस्तिष्क शामक भी है।

पाचनसंस्थान—तिक्तरस होने के कारण यह अग्नि को दीप्त करती है। अमीवा का भी नाशक है।

रक्तवहसंस्थान—यह हृद्य है और शोथ को दूर करती है तथा रक्तपित्त शामक है।

श्वसनसंस्थान—तिक्तरस होने के कारण इससे कफ का निःसरण सुविधा से होता है और स्वर साफ होता है।

मूत्रवहसंस्थान—तिक्त होने से यह प्रमेहघ्न है।

प्रजननसंस्थान—मधुरविपाक और शीतवीर्य होने से यह स्तन्यजनन तथा तिक्त होने से स्तन्यशोधन है।

त्वचा—इससे त्वचा की रक्तवाहिनियाँ प्रसारित हो जाती हैं, अतः त्वचागत रक्तसंवहन उत्तम होने से इसकी क्रिया विविध चर्मरोगों पर लाभकर होती है। इससे व्रणों का शोधन एवं रोपण होता है।

तापक्रम—तिक्तरस होने के कारण यह आमपाचन एवं ज्वरहर है।

सात्मीकरण—मधुरविपाक तथा शीतवीर्य होने के कारण यह वल्य एवं वयःस्थापन है। इससे शरीर के सभी अंगों की क्रिया उत्तेजित होती है जिससे आरोग्य होता है और बल तथा आयु की वृद्धि होती है।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग त्वचा एवं वृक्कों से होता है और उत्सर्गकाल में इन अवयवों को उत्तेजित करती है।

अहित प्रभाव—इसके अतियोग से कभी-कभी शीतजन्य वातवृद्धि के कारण मद, शिरः-शूल, भ्रम और अवसाद उत्पन्न होते हैं। त्वचा में लालिमा और कण्डू होती है। ऐसी अवस्था में मात्रा कम कर दे या प्रयोग बन्द कर दे।

प्रयोग

दोषप्रयोग—मण्डूकपर्णी कफपैत्तिक विकारों में प्रयुक्त होती है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—कुष्ठ, व्रण तथा अन्य चर्मरोगों में इसका लेप किया जाता है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मेध्य और स्मृतिशक्तिवर्धक होने के कारण इसका प्रयोग मस्तिष्कदौर्बल्य एवं तज्जनित उन्माद, अपस्मार आदि विकारों में करते हैं।

पाचनसंस्थान—दीपन होने के कारण इसका प्रयोग अग्निमांद्य, ग्रहणी आदि रोगों में करते हैं।

रक्तवहसंस्थान—हृदय की दुर्बलता तथा तज्जन्य शोथ में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त, रक्तपित्त में भी प्रयोग करते हैं।

श्वसनसंस्थान—कफनिःसारक होने के कारण कास, श्वास तथा स्वरभेद में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेह में यह लाभकर है।

प्रजननसंस्थान—स्तन्यजनन तथा स्तन्यशोधन होने से प्रसव के बाद स्तन्य की कमी एवं विकृति होने पर प्रयोग करते हैं।

त्वचा—कुष्ठघ्न होने के कारण कुष्ठ, विशेषतः ग्रन्थिक कुष्ठ, जीर्ण व्रण तथा क्षयज व्रण में प्रयुक्त होती है। फिरंग की द्वितीयावस्था में जब विकार त्वचा एवं कला में अधिष्ठित होता है तब इसके प्रयोग से लाभ होता है। गंडमाला, श्लीपद आदि में भी उपयोगी है।

तापक्रम—आमपाचन तथा ज्वरघ्न होने के कारण आमदोष एवं तज्जन्य ज्वर आदि विकारों में प्रयोग होता है।

सात्मीकरण—वयः स्थापन और बल्य होने से सामान्य दौर्बल्य में रसायन के रूप में इसका प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—पञ्चाङ्ग।

मात्रा—स्वरस १०–२० मि० लि०।

विशिष्ट योग—ब्राह्मीपानक, ब्राह्मीतैल, सारस्वतारिष्ट, सारस्वत घृत।

निवारण—इसके अहितकर प्रभाव के निवारण के लिए विरेचन तथा अन्य वातशामक औषध विशेषतः सूखी धनियाँ उपयुक्त होती है।

वक्तव्य—मण्डूकपर्णी को यदि सुखाने की आवश्यकता हो तो छाया में ही सुखाना चाहिए क्योंकि धूप में सुखाने से इसका उडनशील तैल उड़ जाता है जिससे उसकी शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इसका क्वाथ या फाण्ट भी नहीं बनाया जाता।

आजकल प्रायः मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी को पृथक् मानकर इनसे क्रमशः C. asiatica और Bacopa monnieri का ग्रहण करते हैं किन्तु मेरे विचार से मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी दोनों शब्द पर्यायवाची हैं और एक ही द्रव्य (C. asiatica) के बोधक है। B. monnieri (जलनीम) संहितोक्त ऐन्द्री है जिसका वर्णन आगे किया गया है।

× × × ×

'मण्डूकपर्णी·····प्रमृतोनि। रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च कुष्ठमेहज्वरश्वासकासारुचिहराणि च॥ कषाया तु हिता पित्ते स्वादुपाकरसा हिमा। लघ्वी मण्डूकपर्णी तु·····।' (सु. सू. ४६)

'ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघुः मेध्या च शीतला।
कषाया मधुरा स्वादुपाकायुष्या रसायनी॥
स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकासजित्।
विषशोथज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी॥' (भा. प्र.)

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः·····। आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि। मेध्यानि चैतानि रसायनानि·····।' (च. चि. १)

'हृतदोष एव प्रतिसंसृष्टभक्तः यथाक्रममागारं प्रविश्य मण्डूकपर्णीस्वरसमादाय सहसूसंपाताभिहुतं कृत्वा यथाबलं पयसा पिबेत्। एवं दशरात्रमुपयुज्य मेधावी वर्षशतायुः भवति।' (सु. चि. २८)

'रसो मण्डूकपर्ण्यास्तु प्रलेपात् पिटिकामयम्।·····प्रणाशयेत्॥ (सोढल)

M. P. L., I, 216-220.

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- ब्राह्मी सोमा रस में तिक्त है। यह शोथ, पाण्डु रोग तथा ज्वर को दूर करती है। यह जाठराग्नि दीपक है, कुष्ठ रोग तथा कण्डू का नाश करती है और प्लीहा रोग, वात रोग तथा कफ रोग को जीत लेती है और भी ब्राह्मी आयुवर्द्धक है, शीतल है, मेध्य है, कषाय रस, तिक्त रस तथा लघु है। यह स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाली तथा स्वरवर्द्धक है और कुष्ठरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह तथा रक्त विकार एवं कास को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- ब्राह्मी, शीतल, कषाय रस तथा तिक्त रस है और वात विकार तथा रक्त पित्त का नाश करती है। यह बुद्धि, प्रज्ञा तथा मेधा को बढ़ाती है तथा आयुवर्द्धक है। **क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी के गुण-** क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी तिक्त रस उष्ण तथा सारक है और वात रोग, आम वात तथा शोथ को दूर करती है।

भाव प्रकाश के अनुसार- ब्राह्मी शीतल, सारक, तिक्तरस, लघु, मेध्य तथा हिम है। यह कषाय रस, मधुर रस, पाक में स्वादिष्ट, आयुकारक तथा रसायनी है। यह ज्वरवर्द्धक तथा स्मृति प्रद है और कुष्ठ रोग, पाण्डु रोग प्रमेह, रक्त विकार तथा कास नाशक है। यह विष विकार, शोथ तथा ज्वर को दूर करनेवाली है। इसी प्रकार मण्डूकपर्णी के भी गुण हैं।

राजवल्लभ के अनुसार- मण्डूकपर्णी, कासनाशक, स्वादिष्ट पाकी तथा रसायनी है। ब्राह्मी मलभेदक, गुरु, मेधावर्द्धक तथा पित्त एवं कफनाशक है।

सुश्रुत के अनुसार- ब्राह्मी कषाय रस, पित्त विकार में हितकर स्वादु पाकी तथा स्वादिष्ट एवं हिम है। (सु.सू.अ.४६)।

वैद्यकशास्त्र में ब्राह्मी का प्रयोग-

(१) **अपस्मार में ब्राह्मी का प्रयोग-** अपस्मार में ब्राह्मी का रस दूध के साथ पान करे। (च.चि.अ.१३)। (२) **रसायन कार्य के लिए मण्डूकपर्णी का प्रयोग-** रसायन गुण के लिए मण्डूकपर्णी के स्वरस का दूध के साथ प्रयोग करे। (च.चि.अ.१)। (३) **पुष्टि, आयु, बल तथा आरोग्य के लिए मण्डूकपर्णी का प्रयोग-** सोंठ तथा मुलेठी के साथ मण्डूकपर्णी का कल्प पुष्टि, आयु, बल एवं आरोग्य की प्राप्ति के लिए करे। (चि. चि.अ.१६)। (४) **उदर रोग में मण्डुकपर्णी का प्रयोग-** निशोथ तथा मण्डूकपर्णी का शाक उन्हीं दोनों के स्वरस के साथ सिद्धकर अम्ल, स्नेह तथा नमक रहित बार-बार पकाकर बिना अम्ल खाये हुए एक मास तक इस शाक का सेवन करे। इससे प्यास लगने पर उसी का स्वरस पान करे। (च.चि.अ.१८)।

(१) **मेधा तथा आयु की कामना के लिए ब्राह्मी का प्रयोग-** वमन-विरेचनादि से शरीर के शुद्ध हो जाने पर आगार (कुटी) में प्रवेश कर तथा भोजन कर ब्राह्मी का स्वरस लेकर सहस्र सम्पात से अभिहुत कर अपने बल के अनुसार पान करे। औषध के पच जाने पर दो पहर बाद विना नमक का यवागू पान करे। दूध सात्म्य व्यक्ति दूध के साथ भोजन करे। इस प्रकार सात दिन तक उपयोग कर ब्रह्मवर्चसी तथा मेधावी होता है। दो सप्ताह तक उपयोग कर अपनी इच्छा के अनुसार ग्रन्थ को बना लेता है। तीन सप्ताह तक उपयोग कर दो बार उच्चारण करने पर सैकड़ों श्लोकों का धारण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार इक्कीस दिन तक उपयोग कर अलक्ष्मी (दरिद्रता) को दूर करता है और मूर्तिमान सरस्वती देवी उस व्यक्ति में प्रविष्ट करती है। इस प्रकार सभी श्रुतियाँ उसको याद हो जाती हैं। (सू.चि.अ.२८)। (२) **मेधा तथा आयु की कामना करनेवाले के लिए मण्डूकपर्णी का प्रयोग-** वमन-विरोचनादि से शरीर को शुद्ध कर तथा संयमित भोजन कर नियमानुसा

आगार में प्रवेश कर माण्डुकपर्णी का स्वरस लेकर एक हजार बार अभिहुत कर बल के अनुसार दूध में मिलाकर पान करे या उसको पीने के बाद दूध पान करे। औषध के पच जाने पर यवान्न (यव) का आहार दूध के साथ करे। अथवा तिल के साथ पाकर तीन मास तक दूध के अनुपान के साथ सेवन करे। पच जाने पर दूध, घी तथा भात सेवन करे। ऐसा औषध का सेवन करते हुए मनुष्य ब्रह्म तेज तथा श्रुति (वेद) को जाननेवाला हो जाता है तथा सौ वर्ष आयु तक जीवित रहता है। इस प्रयोग में तीन दिन उपवास कर तीन दिन भोजन करे, तीन दिन के बाद दूध तथा घी पान करे अथवा एक विल्व मात्रा (५० ग्राम) मण्डूक पर्णी का कल्क दूध में मिलाकर पान करे। इस प्रकार दस दिन तक प्रयोग करने से मेधावी होता है तथा सौ वर्ष तक जीवित रहता है। (सुश्रुत)

उन्माद में ब्राह्मी कुष्माण्डी का प्रयोग- ब्राह्मी तथा कुष्माण्डी का स्वरस उन्माद का नाश करनेवाला कहा गया है। ये अलग कूट तथा मुलेठी मिलाकर पान करे। (चक्र.उन्माद चि.)।

मसूरिका में ब्राह्मी स्वरस का प्रयोग- मसूरिका में ब्राह्मी का स्वरस मधु मिलाकर पान करे। (बंगसेन, मसूरिका चि.)।